

इस पुनर्जागरण और आधुनिकीकरण के सदीय में विदेशी आक्रमणकारी भारतीय शासक परिवारों के साथ घुल-मिलकर उनके प्रभाव में आ गए। विदेशी राजवंशों की राजधानियाँ सांस्कृतिक संश्लेषण की केन्द्र बन गई जिससे भारतीय सभ्यता को एक विशिष्ट सर्वदेशीय स्वरूप प्राप्त हुआ। गुप्त काल में पुराणों में वर्णित हिन्दू धर्म का उठाव हुआ। महात्मा बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार मानते थे। ब्राह्मणवाद और बौद्धवाद एक-दूसरे के समीप आए। हिन्दू धर्म, आदिम आस्थाएँ, अभ्यास और विदेशी धार्मिक प्रतीक भी समीप आए। हिन्दू समाज सांस्कृतिक और सामाजिक समूहों का एक संघ बन गया जिसमें विचारों और प्रथाओं का स्वतंत्र आदान-प्रदान और अच्छे पड़ोसी सम्बन्ध पाए जाते थे।

फ्राहियान के अनुसार पाँचवीं सदी में गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत उत्तर भारत में सर्वत्र सम्पन्नता थी। व्यापारियों के पास अतुल सम्पत्ति थी। व्यापार और बैंकिंग प्रगति पर थे। धनी लोग स्कूल, बौद्ध मठ, मन्दिर, अस्पताल और भिक्षालय चलाने के लिए उदारता से धन खर्च करते थे। पाटलिपुत्र में बौद्ध मठ एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र बना हुआ था। लोग शकुनों में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास ज्योतिष में भी था। सामाजिक त्यौहारों और उत्सवों के अवसरों पर नृत्य, संगीत और दावत का आम रिवाज था। वसन्त उत्सव खुशी से मनाया जाता था।

समाज के विभिन्न अंगों के शांतिमय और सुव्यवस्थित कार्य के लिए धर्म एक वास्तविक आचार संहिता थी, न कि कानून। धर्मशास्त्र या स्मृतियों में प्रत्येक जाति और व्यवसाय, समाज में प्रत्येक सम्बन्ध—राजा और प्रजा, पति और पत्नी, गुरु और शिष्य के बारे में नियम दिए गए थे। नियम कठोर नहीं थे, और नई परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित किए जाते थे। कभी-कभी कानून-निर्माता और पुरोहित वर्ग अपने स्वयं के विचार प्रविष्ट करके, नई संरचनाएँ और निषेध सुझाते थे। एक चीनी यात्री ह्वेनसांग सातवीं सदी में भारत आया। उसके अनुसार लोग ईमानदार थे और वादे के पक्के थे। लोगों का विश्वास था कि बुरा काम करने पर दंड अवश्य मिलता है।

शास्त्रों में उल्लेखित नियमों द्वारा सामाजिक जीवन शासित होता था। हिन्दू समाज जातियों और उपजातियों में विभक्त था। सामाजिक अन्तःक्रिया और विवाह (सहभोजित्व और वैवाहित) के नियमों का सख्ती से पालन किया जाता था। खेल-कूद, त्यौहारों और उत्सवों का मनाना और उपनयन (जनेऊ) धारण करना सामान्य बात थी। पाश्विक जाति नियमों के फलस्वरूप भारतीय समाज पतन की ओर अग्रसर हुआ। निम्न और अछूत जातियों को अपमानित किया गया। स्त्रियों को दबाकर रखा गया। गण (कुलीनतंत्रीय राज्य), श्रेणी (शिल्पसंघ) और संघ (बौद्धमठ श्रेणियाँ) आदि सामूहिक संगठन विघटित होने लगे। जाति प्रथा के प्रादुर्भाव की वजह से आर्थिक श्रेणियों के स्थान पर सामाजिक श्रेणियाँ ज्यादा महत्वपूर्ण बन गईं। अल-बरूनी ने लिखा है कि 11वीं सदी में भारतीय विदेशियों से घृणा करने लगे थे। श्रम की महिमा आत्म-सम्मान की सूचक नहीं रही। समाज अत्यधिक विभेदित हो गया। कर्ज के भुगतान न कर पाने पर गुलाम बनाना एक आम रिवाज हो गया था। ऐसे लोगों को चाण्डाल, पुलकराज और निशाद के नामों से जाना जाता था। 'अछूतों' को उच्च जातियों से अलग रखा जाता था। जाति प्रथा और दासता में दक्षिण और उत्तर भारत में कोई अंतर नहीं था। उत्तर की तुलना में दक्षिण में ग्रामीण जीवन और शिल्पसंघों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त थी।

भारतीय समाज के आधार (Bases of Indian Society)

भारतीय समाज को संगठित रखने हेतु जिन महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं को बनाया गया था, वे विश्व के इतिहास में अपूर्व हैं। ये व्यवस्थाएँ मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक एक कर्म प्रधान जीव बनाने में मददगार हैं। भारतीय समाज में बाहरीपन अथवा दिखावे को महत्व न प्रदान कर जाति की कर्तव्यपरायणता को उसका सबसे महत्वपूर्ण धर्म माना गया था। अतः धर्म परम्परागत भारतीय समाज की आधारशिला है। जीवन का हर पक्ष धर्म से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। यही वजह है कि व्यक्ति तथा समाज के कार्यों तथा अधिकारों का निर्धारण शास्त्रकारों एवं स्मृतिकारों के द्वारा किया गया है। मनीषियों एवं समाज चिन्तकों ने व्यक्ति और समाज की प्रगति को ध्यान में रखते हुए सामाजिक जीवन को संगठित बनाये रखने की दृष्टि से लोगों के समक्ष ऐसा जीवन दर्शन रखा तथा इस तरह की